मनुष्य बनो

…री
…६५

बा० पू
२०.००

शरण,

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

श्रद्धा

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार, सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की २२ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य ३०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली की

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ४४	फरवरी-९५	अङ्क—५

प्रेम धारा से :

शब्द

हंसो पर जो राज करे, वह हंसराज कहलाता है।
प्यार करे भगवान से जो, वह वैसा ही बन जाता है॥
हंस की वृत्ति धारण करके, मोती चुगने होते हैं।
मानसरोवर मैल उतारें सुख आनन्द से सोते हैं॥
काग की वृत्ति छूट गई, हंसों की संगत करने से।
तीन ताप सब दूर हुये, सन्तों की शरणी पड़ने हैं॥
दसवें द्वारे पहुँच के भाई. हंस की पदवी मिलती है।
नौ दरवाजों से ऊपर चढ़, कली हृदय की खिलती है॥
हंसों की सोहबत ने जाकर, सब काग बदलते जाते हैं।
वो मानसरोवर के वासी, सत चित आनन्द को पाते हैं॥
कोई नकल करेगा उनकी क्या, वो उड़ते है आसमानों में।
वो अवगुण देख नहीं सकते वो दया करों दीवानों पर॥
ऐसे ही तुम भी हंसराज, प्रशंसा मेरी करते हो।
'गाफिल' से प्यार बढ़ाते हो, और बुरे कर्म से डरते हो॥

(शिवव्रतलाल जी महाराज)

कर्म धर्म निष्ठा के भक्त

बारमुखी जी गणिका की कथा

दक्षिण देश में एक वेश्या रहती थी। उसका नाम बारमुखी था। वह कैसी थी कौन थी और क्या थी ? हमको इन बातों से कोई प्रयोजन नही है। हम जिस वस्तु को देखते हैं उसमें से सार वस्तु को निकाल लेते हैं, बाकी को जिसका ग्राहक हो वह उसे ले जाये।

इस वेश्या के द्वार पर एक बहुत बड़ा पीपल का वृक्ष था। उसके नीचे एक स्वच्छ और बड़ा सुन्दर, लम्बा चौड़ा चबूतरा बना हुआ था। साधुओं की मण्डली इधर से निकली। चबूतरे को देखकर वह लोग बहुत ही प्रसन्न हुये। सालिग्राम की मूर्तियो के बटओं को डालियो में लटका कर वहां ही आसन मार कर बैठ गये और रात भर यहीं ठहरने का विचार किया। सन्ध्या समय गणिका ने घर आकर हजारों साधुओं का जमघट देखा। मन ही मन में कहने लगी 'आज मेरे पीपल में कैसे बड़े-बड़े फल लटक रहे हैं। जब उसे पता लगा कि यह साधु हैं और डालियो में सालि-ग्राम के बट्ये लटकाये हुये हैं वह बहुत ही लज्जित हुई और घर में जाकर छुप रही कि कहीं ऐसा न हो यह मेरा हाल

सुन लें और डेरा डण्डा उठाकर चलते बनें। इसी एक विचार में उसके जीवन सुधार का तत्व छुपा हुआ था।

सूर्य भगवान के अस्त होते ही घंटे शंख बजने लगे। आरती होने लगी। साधू प्रेम से भजन कीर्तन करने लगे। भगवान की स्तुति चारों ओर गूंज उठी। यह लजाई तो थी ही कहने लगी मैंने बुरी कमाई की है। साधू मेरे यहाँ आये हैं। सम्भव है मेरे जीवन का सुधार हो जाये। कैसी लज्जा की बात है कि मैं इनकी सेवा न करूँ। साधू सेवा ग्रहस्थी का धर्म है। यह सोचकर वह उठी, थाल में अशर्फियां भर लाई और साधुओं को भेंट की। उन्होंने पूछा 'माई तू कौन है?' यह बोली, यह न पूछिये और सब कुछ पूछिये।' साधु कहने लगे, बता दे! बताने में क्या हानि है? इसने हाथ बांधकर कहा—मैं वह हूँ कि यदि नर्क भी एक बार मुझे देख ले तो नाक मुँह सिकोड़ने लगे। मैं वेश्या हूँ। एक अक्खड़ साधू बोल उठा 'चल दूर हो। रंडी मुन्डी के धन से हमको क्या काम है? अब तो उसे भी बोलने का साहस हुआ—'भगवन्! मैंने यह कहा कि नर्क को भी मुझे देखकर घृणा होगी परन्तु मैंने यह नहीं कहा कि गङ्गा भी मुझसे दूर भागेगी। मैं गङ्गा में नहाती हूँ। उसकी गोद में खेलती हूं। उसके पानी से अपना मैल उतार कर शुद्ध और पवित्र हो जाती हूँ। लोग कहते हैं कि साधू गङ्गाजल से भी अधिक पवित्र है। क्या उनमें भी घृणा होती है? यह नई बात है। अच्छा! यदि तुम साधू हो तो अपने साथ मुझे भी तारो। इससे अधिक मैं और क्या कह सकती हूँ!

वेश्या की बातें महन्त के दिल में घर कर गई। वह बोला 'माई! स्वामी जी के लिये इसका मुकुट बनवा दे।

उसने कहा–जब तुम स्वीकार नहीं करते हो तो फिर स्वामी मेरी भेंट क्यों लेने लगे ? पहिले साधू तब स्वामी ! साधू ही तो उसकी झाँकी है। जब साधू मिलते हैं तब ईश्वर का दर्शन होता है।

महन्त ने उत्तर दिया—माई ! तुझे जो कहना था कह दिया गया। भेंट न लेना होता तो मुकुट बनवाने की आज्ञा भी न दी जाती।

वेश्या समझ गई। घर से और भी अशरफियां लाई और तीन लाख रुपये का जड़ाऊ मुकुट बनवाया। वह भी साधुओं के साथ रंगनाथ स्वामी के दर्शन को चली। जब वहाँ पहुँच गई स्त्री धर्म का समय आ गया था। रात को रोई चिल्लाई हाय ! यह क्या हुआ ? इस अपवित्रता के समय कैसे दर्शन को जाऊँ। सेवकों को स्वप्न हुआ कि मेरी एक भक्तिनी आई हुई है। प्रातः काल उसे आदर के साथ मेरे सामने लाओ। दिन निकलते ही सेवकों ने आकर उससे मन्दिर में चलने की प्रार्थना की। वह हिचकिचाई परन्तु यह कब मानने वाले थे। उसे हाथों हाथ ले गये। जिस समय यह मन्दिर में पहुँची, रंगनाथ जी का सिर मुकुट के लिये आप ही आप झुक गया। सिंहासन कुछ ऊंचा और उसके हाथ की पहुँच से बाहर था। मूर्ति ने और भी सिर झुका दिया इसने आनन्द में मग्न होकर मुकुट पहिना दिया और अपने भाग्य को सराहने लगी।

यह साधुओं के पल भर की संगत का फल है।

शब्द

मैं सेवक का सेवक मेरा, भेद भाव नहिं कोई।
प्रेम प्रीत की महिमा भारी सेवक प्यारा होई ॥

जाति पाँत पाखण्ड पसारा, इक भक्ती का नाता।
जो कोई मुझको मन से चाहे, मैं उसके रंग राता॥
नाता प्रेम का सबसे उत्तम, यही सार है भाई।
प्रेम भक्त की लीला अद्भुत, भक्ती है सुखदायी॥
बड़े बने सो नीचे आये, नीचा ऊँचे आया।
पाँव की धूली गगन में पहुंचा, जल पाताल पहुंचाया॥
ऊँचा रहै सो प्यासा जावे, नीचा जल को पीवे।
राधास्वामी मेहर करें जब, प्यारा जुग जुग जीवे॥

त्रिलोक जी की कथा

त्रिलोक जी सुनार थे, यह पूरब देश के रहने वाले थे। भक्तों के भक्त, सेवकों के सेवक और साधु सेवा की निष्ठा धारण कर रक्खी थी। जो कमाते साधुओं को खिलाते। यह उनका नित्य नियम था। घर में कुछ नहीं रखते थे। उनका कथन था कि—

पका पकाया साधू पाये। बासी बचे न कुत्ता खाये॥

उस देश के राजा की लड़की का विवाह था। गहने बनाने के लिये राजा ने बहुत रुपये दिये। इन्होंने सबका सब साधु सेवा में उड़ा दिया। गहने की मांग होने लगी। यह टाल मटोल किया करते थे। जब राजा की ओर से बड़ी कड़ाई हुई इन्होंने प्रातःकाल गहनों के देने के लिये बचन दिया। सयोगवश रात के समय साधू आ गये। यह उनकी सेवा में ऐसे बेसुध और मग्न हुये कि अपने बचन को एक दम भूल ही गये। दिन निकलते ही डर के मारे भाग निकले और जङ्गल में जा छुपे। राजा इनके घर आदमी भेजने ही

को था कि इनके रूप का एक मनुष्य दरबार में पहुँचा। उसने गहने राजा के सामने रख दिये। गहने बड़ी ही कारीगरी के साथ बनाये गये थे। ऐसे विचित्र और अद्वितीय भूषण राजा ने पहिले कभी नहीं देखे थे। उसने प्रसन्न हो कर इस मनुष्य को बहुत कुछ पारितोषिक दिया।

उसने रुपये लेकर त्रिलोक जी के घर में धूम-धाम से भण्डारा किया। वह एक दम त्रिलोक जी के रूप रंग का था। भण्डारा समाप्त होने पर एक मनुष्य हाथ में प्रसाद लिये हुए त्रिलोक जी के पास पहूंचा 'भाई ! यह प्रसाद लो यह तुम्हारे लिये आया है। पूछा प्रसाद कैसा ? उत्तर मिला 'त्रिलोकी सुनार ने गहने बनाने के लिये राजा से बहुत कुछ पारितोषिक पाया था। उसके घर भण्डारा था। यह प्रसाद उसी ने भेजा है।' यह आश्चर्य के साथ कहने लगे। त्रिलोक और भण्डारा करे ! उसके पास क्या धरा है ? उसने कहा 'तीन लोक में त्रिलोक जैसा कौन है। उस जैसा तो साधू सेवा करने वाला कोई भी दिखलाई नहीं देता।'

इन्होने प्रसाद ले लिया। घर पर आये। वास्तव में इन के भण्डारे की धूम थी। सब प्रशंसा कर रहे थे। यह समझ गये कि कुछ नहीं यह ईश्वर की लीला है और फिर उस दिन से इनका प्रेम और भी बढ़ गया।

तुम सेवक कैसे हो भाई, सेवा चित नहिं लाते।
बिन सेवा उद्धार कहा है, क्यों नहिं भक्ति कमाते ॥
अपनी सी तुम कर लो करनी, सतगुरु जानें अपनी।
अपने धर्म-कर्म को पालो, धारों ऐसी रहनी ॥
हर्ष शोक व्यापे नहिं मन में, ममता मोह न आवे।
हित से सेवा भाव में लागी, तुम्हें न काल सतावे ॥

काम करो कर्तापन त्यागो, यह सेवक की रहनी।
कथनी बदनी काम न आवे काम की वस्तु है करनी॥
सेवक धर्म कठिन अति दुस्तर, चिबानी सब सोधो।
राधास्वामी नाम को सुमिरो, निज मन को परबोधो॥

जस्सू स्वामी जी की कथा

जस्सू स्वामी का जन्म स्थान गङ्गा यमुना के बीच में बतलाया जाता है। यह खेती का काम करते थे और साधुओं की सेवा और भजन भाव में मस्त रहते थे। जो कुछ खेत से मिलता सब साधुओं को खिला देते। यह साधु सेवा को मुख्य समझते थे।

एक बार इनके घर चोर आये और बैलों को खोल ले गये परन्तु ईश्वर की कृपा से फिर वैसे ही बैल खुंटों से बंध गये। चोर समझते थे कि स्वामी जी बैलों के न होने से दुःखी होंगे और उनकी खेती का काम बन्द हो गया होगा। दूसरी बार जब फिर आये तो उन्हीं बैलों को खूँटों से बँधा पाया। आपस में कहने लगे 'बैल तो हम चुरा ले गये थे। इन्हे कौन लाकर बाँध गया।' जब अपने घरों को गये वहाँ भी बैल बंधा पाया। बहुत ही घबराये और फिर स्वामी जी के स्थान पर आये। बैल यहां भी ज्यों के त्यों बैठे हुये जुगाली कर रहे थे। अब तो वह बहुत ही डरे। कोई बात समझ में न आई। घबराहट में जाकर बैलों को खोला और स्वामी जी के पास लाये। इन्होंने आकर दूसरे बैलों को जिन्हें वह देख गये थे वहां नहीं पाया। स्वामी जी के पाँव पर गिर कर अपने अपराध के क्षमा करने को लिये प्रार्थना करने लगे और उसी दिन उनके चेले हो गये। फिर चोरी का नाम नहीं लिया और साधू हो गये।

दोहे

दाता दानी देवता, नहीं गुरु सम कोय ।
ज्ञाता ज्ञानी चतुर नर, गुरु किरपा से होय ।।
भव सागर अति गहिर है, सूझै वार न पार ।
गुरु खेवटिया जब मिलै, खेइ लगावे पार ।।

भक्तन के लाज काज, सतगुरु जग आये ।।
साजा मंगल समाज, थापा भक्ति का राज ।
सुख सम्पत्ति रहे गाज, आनन्द झर लाये ।।
घट में बाढ़ी प्रतीति, उपजा मन प्रेम प्रीति ।
लेखी सुरत शब्द रीति, चरनन लौ लाये ।।
प्रगटा हिय सत् का नूर, बाजा अनहद का तूर ।
काल करम हुये दूर, ज्ञान गम्य ध्याये ।।
काम क्रोध लोभ मोह, अहंकार दुरमति द्रोह ।
माया ममता का छोह, चित्त न रहाये ।।
राधास्वामी प्रेम रूप, अद्भुत अचरज अनूप ।
ज्ञान ध्यान ब्रह्म कूप देखा हरषाये ।।

(गताँक से आगे)

भगवान—वहां हम क्या खाते, क्या पहिनते और किस तरह बात चीत करते हैं ?

फकीर—वहां आनन्द और मस्ती खाते हैं। हमारा बोलना वह है जो इस चेतन्य रूप की हरकत का शब्द है। और प्रकाश हमारी पोशाक है या देह है। वहां और किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं है। आनन्द खाते आनन्द पीते और आनन्द लेते हैं।

भगवान—कहते हैं वहां प्रकाश १२ सूर्य के बराबर है।

फकीर—सुना हुआ मैंने भी है मगर मैं कह नहीं सकता। निज अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि वहां प्रकाश अवश्य बहुत अधिक है मगर यह कहना कि वह १२ सूर्य के बराबर है मेरी शक्ति से परे हैं।

भगवान—क्या इस स्थान को पहुंची हुई सुरत (रूह) फिर आवागवन में आती है ?

फकीर—हाँ, मैं अब इस शरीर में रहता हुआ वहां से ऊपर भी जा सकता हूँ और नीचे भी आता हूँ तो इससे ज्ञान हुआ कि यहां भी चढ़ाव व उतार का सिलसिला मौजूद है जो कि मौज के आसरे हैं या सत में क्षोभ आने के आसरे हैं। वहाँ से रूहों का नीचे के मण्डलों में उतार भी होता है और ऊपर के मण्डलों में चढ़ाव भी होता है। यह मैं अपने अनुभव के आधार पर कहता हूँ कि यहां भी आवा गवन है अर्थात आना और जाना लाजिमी है क्योंकि जो वस्तु क्षोभ में या गति के घेरे में अन्दर है उसका गतिमान होना लाजिमी है। इसलिये इस स्थान पर पहुँची हुई रूह भी आती जाती, चढ़ती उतरती रहती है।

भगवान—अच्छा ! अब यह बताइये कि तवज्जह या

सुरत इस पृथ्वी लोक पर कैसे आई ?

फकीर—सुनो ! यह तवज्जह या सुरत (आत्मा) वास्तव में जात, परमतत्व, अकाल या अनामी का छोटे से छोटा अंश है। जिस प्रकार किरणों के भण्डार का नाम सूर्य और बूंदों के भण्डार का नाम समुद्र है इसी प्रकार सुरतों (रूहों) का भण्डार जात, परमतत्व या अनामी या अकाल पुरुष कहलाता है और उसके प्राकटय का देह चेतन्य देश है। हर एक अंश या कारण या सुरत जो उस जात (परमतत्व) की अंश है का अपना व्यक्तिगत देह अर्थात चेतन्यपना उसके साथ है। वह चेतन्य पना उसका अपना देह या हैपना कहलाता है। एक दृष्टि से वहां सब सुरतें एक ही हैं और एक दृष्टि से अलग-अलग समझलो। इस चेतन्य देश या प्रकाश व शब्द के देश से एक प्रकार का स्थूल का मादा हमेशा खारिज होता रहता है जिस प्रकार चिराग से धुंआ निकल निकल कर ऊपर छत में अपना मण्डल बनाता रहता है अथवा अग्नि से चिनगारियां। इसका नाम छाया कहो, काल कहो, सूक्ष्म तत्व कहो, ब्रह्म कहो या ब्रह्माण्डीय मन कहो अथवा कोई और नाम रक्खो तुमको अख्त्यार है। वह स्वयं भी प्रकाश से निकलने के कारण प्रकाशमान होता हे। इस काल, ब्रह्म या सूक्ष्म पदार्थ से जो इस चेतन्य देश से स्वाभाविक तौर पर निकलता रहता है, फिर अपनी बारी पर दूसरे लोक या मन्डल बनते और बिगड़ते रहते हैं। चूंकि इस सूक्ष्म पदार्थ या ब्रह्म में अपनी शक्ति या एनर्जी (energy) यथेष्ट नहीं होती इसलिये उसको बदस्तूर प्रकाश और शब्द आदि की शक्ति सतलोक या चेतन्य देश से मिलती रहती है और वह शक्ति अनेक किरणों के रूप में इस सूक्ष्म पदार्थ के साथ मिलकर

नीचे की रचना करती रहती है। हमने उन किरणों का नाम सुरतें (रूहें) रक्खा हुआ है।

भगवान—सत लोक या चैतन्य देश से जो सूक्ष्म पदार्थ निकलता रहता है उससे रचना कैसे होती है ?

फकीर—देखो ! प्रकृति में हर प्रकार की बिजली की शक्ति अपने इर्द-गिर्द एक प्रकार का घेरा बनाती रहती है जिससे उसका असर रहता है। अप्राकृतिक बिजली का भी अपना घेरा होता है। इसी तरह इस चेतन्य देश का घेरा या मण्डल सूक्ष्म माद्दा, ब्रह्म, काल या मन का भण्डार कहलाता है। चूंकि यह अत्यन्त प्रकाशवान और शक्तिवान होता है इसलिये इसका भी अपना घेरा होता हैं और विभिन्न धारों और किरणों का, जो उस घेरे या मण्डल के अन्दर होती है, परस्पर मिलाप होता है। यह धारें दो प्रकार की होती हैं। एक धन Positive सत) और दूसरी ऋण (Negative असत) और तीसरी शक्ति सुरत की होती है जो ऊपर से ली हुई होती है। चूंकि सुरत (रूह) मूलतत्व या जात की अंश होती है इसलिये इसके मिलाप से रचना होने लगती है। अकेली धन(positive) व ऋण (Negative) धारें उस समय तक रचना नहीं कर सकती जब तक सुरत की शक्ति प्राप्त न हो।

भगवान—यह रचना किस प्रकार की होती है ?

फकीर—सत लोक या चेतन्य देश की रचना मिलौनी से रहित है अर्थात वहाँ केवल चेतन्यता है इसलिए वहाँ मस्ती या आनन्द की रचना होती है। यद्यपि आनन्द तो यहाँ भी होता है मगर साथ ही बुद्धि और बिचार की शक्ति पैदा हो जाती है जिसका नाम विज्ञान भी रक्खा जा सकता है या विवेक भी कह सकते हैं। यहाँ भी आबागमन होता है।

जात (मूल तत्व) या उसका अंश जिस पर सतलोक में केवल चेतन्यता का गिलाफ था अब यहां पर सूक्ष्म माद्दा का दूसरा गिलाफ चढ़ जाता है। जहाँ वह आनन्द ही आनन्द लेती थी, अब नीचे उतरने पर उसमें संकल्प विकल्प का अंखुआ फूटा। वह खुला। विवेक शक्ति पैदा हुई और बढ़ती गई।

भगवान -- विवेक शक्ति जिसका अभी जिक्र आया है उसमें पहले से मोजूद थी या नई उत्पन्न हुई और वह कैसे बढ़ी ?

फकीर—जात [परमतत्व] या अनामी के अंश में यह विवेक शक्ति नहीं थी। चेतन्य देश में वह बहुत ही कमी थी जिसका नाम वहां आनन्द का बोध था मगर सूक्ष्म माद्दा (भूत) से मेल होने पर उसने तरक्की की ओर बढ़ती गई। तुम देखते हो कि विवेक बाह्य प्रभावों के बिना पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जब सूक्ष्म माद्दे का स्पर्श (touch) मिला तब विवेक या बुद्धि पैदा हुई।

भगवान—इस विवेक या ज्ञान के कितने दर्जे हैं ?

फकीर—सहस्रों अर्थात जिस जिस प्रकार के सूक्ष्म माद्दे की मिलौनी होती रहती है उसी-उसी प्रकार का विवेक, ज्ञान या विचार पैदा होता रहता है और सूक्ष्म माद्दे की दशा और विस्तार आदि के अनुसार विवेक का भान पैदा होता रहता है वहां इनका नाम भिन्न-भिन्न प्रकार के लोक रक्खा हुआ है जैसे गन्धर्व लोक, राम लोक, कृष्ण लोक आदि।

भगवान—इन लोकों में क्या होता है ?

फकीर—जात की अंश (आत्मा) भिन्न-२ प्रकार के आनन्द का भान करती है जो कि सूक्ष्म माद्दे की मिलौनी

का परिणाम है, और यह इसका आवागवन है।

भगवान—ठीक है समझ गया। क्या यहाँ से भी जात की अंश (आत्मा) वापिस जा सकती है ?

फकीर—हाँ जा सकती है। जब कभी इस देह या स्थूल जगत से कोई जात की अंश (किसी सत पुरुष की रूह) वापिस जा रही हो और उस लोक में होकर गुजर रही हो, तो उसके प्रकाश से जिस अंश (आत्मा) का सम्बन्ध पैदा हो जाय, वह वापिस जा सकती है। मगर ऐसा बहुत कम होता है क्योंकि उतरने वाले अंश (आत्मा) का रुझान नीचे की ओर होता है।

भगवान—समझ गया। इससे यह साबित होता है कि सन्त पुरुष जब उस लोक से गुजरते हैं तो उन लोकों की बहुत सी रूहों को साथ ले जाते हैं। क्या यही अभिप्राय है ?

फकीर—हां।

भगवान—फिर नीचे की ओर रुझान रखने वाली सुरतों का उतार किस तरह होता है ?

फकीर—वह धारें या किरणें या जात की अंश (रूह) अपने साथ ब्रह्म, मन या सूक्ष्म माद्दे का गिलाफ साथ लिये रहती है। अब उनके चारों ओर एक और घेरा पैदा होता है जो स्थूल माद्दे का होता है। यह स्थूल माद्दा सूक्ष्म माद्दे से इसी तरह पैदा होता है जैसे जलते हुये चिराग से धुँआ अब जात की अंश (धारें या रूहें) एक और स्थूल माद्दे का गिलाफ अपने ऊपर बना लेते है। यह स्थूल माद्दा (भूत) आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के रूप में प्रगट हो रहा है। इसी प्रकार रचना का सिलसिला जारी

रहता है और लात (परमतत्व) की अंश का उतार होता रहता है और यह वह भिन्न-भिन्न योनियों में फंस कर अपने शारीरिक और मानसिक और आत्मिक भान या बोध रखती हुई खेल खेलती रहती है। तथा सुख-दुःख, फिक्र बेफिक्री आदि आदि का बोध रखती है।

भगवान—क्या यह सूक्ष्म और कारण मादा नाश भी होता हैं या हो सकता है।

फकीर—नहीं इसकी हालत और रूप बदलता रहता है नाश नहीं होता।

भगवान—तो फिर आवागवन अथवा हालत व रूप की तब्दीलियों से छुटकारा असम्भव है।

फकीर—जात (मूलतत्व) बिना देह के कभी नहीं रह सकती। सत के साथ सत्ता या, जात के साथ सिफात (गुण) का होना जरूरी है। हां, गुणों की दशा भिन्न-२ हो सकती।

मेरी भी एक अरदास है, सुन लो प्रीतम प्यारे।

इस विचार से सन्तों ने प्रलय के बारे में कहा है कि सत-लोक में प्रलय नहीं होती। कारण यह है कि सत लोक अनामी या जात (स्वरूप) की देह है।

भगवान—अब तक आपने सुरत के नीचे की ओर उतार का जिक्र किया है। अब यह बताइये कि हम शरीर त्याग करने पर किस तरह दूसरा देह धारण करते हैं।

फकीर—इस शरीर त्याग के बाद जात की अंश (आत्मा) अपना सूक्ष्म शरीर यानी विचार का शरीर रखती है। देह से निकलने के बाद वह उन विचारों की

ओर खिचती या रासि व होती है जिससे उसको जीवन भर अनुराग, दिलचस्पी या प्रीति रही है। इसलिये विचार का वह सूक्ष्म तत्व उसको अपने जैसे विचारों की ओर ले जाता है और वह ऐसी जगह जाकर देह धारण करता है जहां उसके विचार की आशक्ति फुर सके, अर्थात जिनका सम्बन्ध पंच भौतिक (Solid matter) पदार्थो से होता है वह स्थूल देह धारण करते हैं। जिनका रुझान भौतिक पदार्थों से नहीं होता, वह ऊपर के सूक्ष्म पदार्थ के लोकों में चले जाते हैं। जिनका सम्बन्ध रुहानी जगत से होता है वे सीधे रुहानी स्थानों या लोकों की ओर झुकते हैं। कोई कोई जिनका सम्बन्ध केवल निज स्वरूप, अकाल, ता अनामी पुरुष से होता है वह व्यक्तित्व से छुटकारा पाकर निज स्वरूप में लय हो जाते हैं।

भगवान—दुबारा जन्म लेने के सिलसिले में क्या रूह उसी समय दूसरा देह धारण कर लेती है जबसे इसका आरम्भ मां के पेट में होता है या कुछ देर बाद ?

फकीर—उसी समय भी और कुछ देर बाद भी। किसी विशेष दशा में रूह किसी जीवित व्यक्ति के अन्दर भी हिलोल करके अपना काम करती है मगर ऐसी रूहें वह होती हैं जो विशेष शक्तिशाली होती हैं।

वास्तव में जात की अंश [आत्मा] का कोई रूप नहीं है। प्रकाश और शब्द या माद्दे से प्रकट होते हैं। यह अपने इर्द-गिर्द प्रकाश, शब्द और ख्यालात अर्थात सूक्ष्म पदार्थ का खोल या गिलाफ रखती है और प्रकृति के नियमानुसार उस गिलाफों के प्रवावों से प्रभावित होकर दूसरे गिलाफों को ओर झुकती है। सोचना, समझना, गति, विवेक विचार

सब कुछ माद्दे की मिलौनी का गुण है। इस माद्दे की संयुक्त सूरत का नाम कर्त्ता पुरुष है। योनि, आवागवन आदि सब काल पुरुष की दया का नतीजा है। यदि कोई व्यक्ति काल पुरुष की सीमा से बाहर हो जाय तो फिर दुःख की उत्पत्ति कहाँ से और क्यों हुई ?

फकीर—अभी तक सृष्टि या रचना का नियम तुम्हारी समझ में भली प्रकार नहीं आया। यदि समझा है तो वह बुद्धि द्वारा समझा है अनुभव से नहीं। इसलिये ऐसा सवाल करते हो। अच्छा सुनो।

देह के परमाणुओं में अनियमितता आजाने से अथवा सूक्ष्म या मानसिक शरीर के नियमानुकूल न रहने से जो मन या विचारों द्वारा दुःख का भान होता है वह वास्तव में कोई दुःख नहीं है और नहीं कुदरत में दुःख का कोई सवाल है। इस दुःख का कारण आदत का कानून है। जो वस्तु दुःख मनाती है वह न तो देह है न मन है न रूह है। फिर वह क्या है ?

मैं उसे जानता हूँ पर अफसोस है उसे शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। वह है मगर अहसास में नहीं आती। वह है मगर देखी नहीं जा सकती। वह है मगर पहचानी नहीं जा सकती। वह है अवश्य लेकिन उसका वर्णन कठिन है। इससे सब कुछ जाना जा सकता है, पहिचाना जा सकता है। भान किया जाता है। वह आप ही आप है। कहने सुनने के लिये सन्त इसको सुरत [रूह] कहते हैं। अथवा जात (स्वरूप) समझ लो। इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये अभ्यास जरूरी है ताकि उसको मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक अवस्थाओं से अलग होने का

अवसर मिले और निज अनुभव प्राप्त हो। यदि ऐसा नहीं होता है तो बुद्धि द्वारा अनुमान कुछ अंश तक ही लाभदायक हो सकते हैं।

ध्यान पूर्वक सुनो ! शरीर की प्रकृति में कोई दोष या गडबड़ी पैदा होने से शारीरिक भान में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन के कारण या प्रभाव से शारीरिक दुःख का भान होता है। क्यों ? क्योंकि उस वस्तु (सुरत) को पहिले एक खास ढंग पर अपना खेल खेलने की आदत थी। अब चूंकि उसमें रुकावट हुई अथवा परिवर्तन हुआ, आदत के खिलाफ काम हुआ इसलिये वह तकलीफ महसूस करती है। देह के रक्त संचार में सुरत की धार बहती रहती है। रक्त संचार में रुकावट हुई। सुरत ने दुःख महसुस किया। मनुष्य को मानसिक रूप से एक विशेष प्रकार के विचारों से सम्बन्ध रखने की आदत होती है और जब बाह्य प्रभावों या अन्य कारणों से उन विचारों के अनुकूल कार्य होता दिखाई नहीं देता तब वह तकलीफ मानती या महसूस करती है। बात बारीक है। मेरे मन्तव्य पर ध्यान रहे वर्ना कहना-सुनना व्यर्थ होगा।

इससे स्पष्ट रूप से साबित हो गया कि दुःख न देह में है न मन में है बल्कि तवज्जह (सुरत) के रुझान को जबरदस्ती बदलने में है।

यदि मनुष्य अपनी तवज्जह (सुरत) पर काबू रक्खे अथवा अपने आपको जब्त या संयम में रखने की आदत डाल ले और प्रतिकूल अवस्थाओं के समय वह अपनी तवज्जह का रुख सहूलियत से बदलने के योग्य हो जाय तो जिस दुःख की तुम शिकायत करते हो वह न रहेगा।

कबीर साहब की वाणी है—

तन धर सुखिया कोई न देखा, जो देखा सो दुखिया हो।
उदय अस्त की बात कहत हूँ, सबका किया विवेका हो॥
घाटे बाढ़े सब कोई देखा, बया गिरही बैरागी हो।
शुक-आचार्य दुःख के कारण, गर्भ से माया त्यागी हो॥
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तापस को दुःख दूना हो।
आशा तृष्णा सब घट व्यापी, कोई महल नहीं सूना हो॥
साँच कहे तो कोई न माने, झूठा कहा न न जाई हो।
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो॥
अवधू दुखिया, भूपत दुखिया, दुखी रंक विपरीती हो।
कहुँ कबीर सकल जग दुखिया, सन्त सुखी मन जीती हो॥

यों तो कुदरत स्वयं तवज्जह के रुख को पलट देती है, जैसे सख्त चोट लगी, बेहोशी आ गई या जहाँ कोई कष्ट हुआ और तवज्जह ने उससे बचाव का ढंग किया। इसी वास्ते लोगों से नाम का साधन रोचकता देकर कराया जाता है कि मानसिक व शारीरिक दुःख के समय मनुष्य अपनी तवज्जह को सुमिरन ध्यान और भजन में लगाकर इन दुःखों से बच जाय। नाम में वास्तव में यह शक्ति है।

भगवान—क्या इससे आपका यह अभिप्राय है कि जिस समय हमको शारीरिक व मानसिक दुःख का भान हो उस समय नाम के सहारे सुरत को देह और मन से हटा दिया जावे तो उस समय दुःख न होगा।

फकीर—हाँ यही अभिप्राय है। प्रत्येक दिन का अनुभव यही बताता है। इसकी विशेष व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।

यदि शब्द योग का साधन हो और इसके साथ-साथ सांसारिक या जीवन की कामनायें न हों तो कदापि कोई कष्ट नहीं होता। हां जब तवज्जह (सुरत) देह में आयेगी तो कष्ट का भान होना जरूरी है।

भगवान—तब इनसे यह समझा जाय कि जब तक तवज्जह देह में रहती है उस समय तक तो कष्ट या दर्द से बचाव न होता होगा क्योंकि उस दशा में जब कि शारीरिक अंगों में खराबी है, सुरत को कष्ट का भान होना जरूरी है।

फकीर—बिलकुल ठीक है। ऐसी दशा में थोड़ा बहुत कष्ट का भान अवश्य होता है। हां, जब तवज्जह को शरीर से ऊँचा रखोगे, दुःख का भान न होगा।

भगवान—आपने जो कुछ कहा है वह सत्य है और प्रतीति भी ऐसा ही होता है। इससे यह साबित हुआ कि जब तक तवज्जह शरीर में है या शरीर में आती रहती है तो शारीरिक कष्ट से कोई व्यक्ति बच नहीं सकता। यदि यह ठीक है तो फिर नाम लेने से क्या लाभ हुआ?

फकीर—सवाल का पहला हिस्सा ठीक है। दूसरे का उत्तर यह है कि जिनको अपने अन्तर में प्रवेश करने का अभ्यास है वे अपनी तवज्जह को शरीर से निकाल सकते हैं और शारीरिक कष्ट से बच सकते हैं। सिवाय इसके और कोई लाभ शारीरिक दृष्टिकोण से नहीं है। हां यदि नाम जप के साथ-साथ दूसरी बातों को भी ध्यान रक्खा जावे जो नाम जप वालों को आवश्यक है तो शारीरिक कष्ट कम होगा।

भगवान—वह अन्य बात क्या है?

फकीर—विषयों से परहेज, भोजन में समता, मानसिक ब्रह्मचर्य, पाचन शक्ति ठीक होना, शारीरिक शौच, पवित्रता आदि-आदि।

सुनो भगवान सिंह ! मैं आप्त पुरुष हूँ। सिवाय सार अनुभव के मैं कोई बात हेर-फेर कर रौनक या भयानक पैराये में नहीं कहता। दाता दयाल महर्षि शिवव्रतलाल के बाहरी चोला अलोप होने पर तुमने मुझे खत लिखा। तुम्हारे दर्द भरे खत को पढ़कर मुझे दया आई। तुम्हें बुलाया। शक्ल-सूरत देखी और साफ-साफ कह दिया कि तुम्हें जो अशांति की शिकायत है इसका कारण पाचन और स्वास्थ्य की खराबी है। इसका कोई सम्बन्ध रूहानियत से नहीं है। न इस अशान्ति या घबराहट के कारण तुम आवागवन में फँस जाओगे। आवागवन से छूटने का तरीका केवल अपने आपको या अपनी तवज्जह का सतगुरु, मालिक अकाल पुरुष या राधास्वामी या कुछ और नाम रखलो, के साथ सम्बन्ध या प्रेम पैदा करना है। बात को समझो शब्द जाल में न फँसो। आवागवन न योग से छूटता है न जप तप से, न संध्या तर्पण से, न सार ज्ञान से, बल्कि सार ज्ञान या राज हठ हक को समझ कर अपने आपको अपने निज स्वरूप सतगुरु से जोड़े रखने से छूटेगा, क्योंकि जब तक मनुष्य की तवज्जह या सुरत किसी ऐसी वस्तु से प्रेम करती है जिसको वह अपने निज स्वरूप से गैर या दूसरी समझता है अथवा वास्तव में वह गैर है उस समय तक वह मनुष्य बाहरमुखी हैं। जो लोग अन्तरी अभ्यास करते हैं मगर उनका प्रेम या लगाव केवल दृश्यों, नजारों या सूरतों से, जो उनके अन्तर में प्रगट होती है तो वे भी आवागवन

से नहीं छूट सकते।

यह दूसरी बात है कि अन्तरीय वृति वाला व्यक्ति ऊपर के लोगों में चला जाय मगर आवागवन से नहीं छूट सकता, इसलिये सन्तों ने सतगुरु को शब्द रूप माना है। शब्द आकाश का गुण है और आकाश प्रकृति का सबसे ऊँचा मण्डल है। इस आकाश के समझने में भ्रम न हो। आकाश तत्व का अर्थ केवल इस स्थूल आकाश तक ही सीमित नहीं होता बल्कि सूक्ष्म व कारण माया में भी आकाष तत्व हैं। अतएव अनहद शब्द में भी अन्तर हैं। जब तक तव-ज्जह (सुरत) कारण माया के आकाश तत्व के शब्द में लय होने का अभ्यास न डालेगी पूर्ण आवागवन न जायगा, यही कारण है कि राधास्वामी मत के अभ्यास में जो विभिन्न प्रकार के शब्द अन्तर में सुनाई देते हैं, उनमें सार शब्द का महत्व है जो कारण माया के आकाश का शब्द है।

तुम बाह्य सतगुरु तक ही अपने आपको सीमित न रक्खो। अकाल पुरुष का, जो इस रचना का आधार है, इष्ट कायम करके प्रेम के भाव को बढ़ाते रहो। स्वयं वहां तक पहुंच हो जायगी। आवागवन से छुटकारा पाने का यही सच्चा अभ्यास और तरीका है।

गुरु को मानस जानते, ते नर कहिये अंध।
दुखी होय संसार में, आगे जम का फंद॥

भगवान—आपने बड़ी स्पष्टता से व्याख्या की है। वास्तव में मैं अब तक गुरु की जात (स्वरूप) को देह-धारी पुरुष तक सीमित रखता था और यही चाहता रहता था कि उससे वही बाहरी प्रेम पहले

जैसा बना रहे मगर उसमें अब तथ्य नहीं पाता।

फकीर—प्रेम का भाव (मानव) देह से समान रूप से सदैव न रहता है न रह सकता है। विवेक का फुरणा होने पर स्वाभाविक से मनुष्य का विचार ऊँचे की ओर जाना चाहता है मगर आदतों का नियम पहिली जैसी हालत को स्थिर रखना चाहता है परन्तु ऐसी हालत बनी रहना सम्भव नहीं है। अब इस प्रेम के भाव को अन्तर में ले जाकर खुल खेलने का अवसर दो। एक ही दशा में अटके न रहो।

भगवान—शास्त्रों में बताया गया है कि मृत्यु के बाद मनुष्य पितृ-लोक, किन्नर लोक, गधर्वलोक, स्वर्ग-नर्क आदि में जाता है। इस विषय में आपका क्या विचार है ?

फकीर—पितृलोक, किन्नर लोक, गंधर्वलोक, स्वर्गलोक, नर्क आदि अवश्य है। मगर यह क्या हैं, इसकी समझ लोगों को नहीं है। सुनो !

पितलोक क्या है ? वह पुरुखों, जिनके रक्त और वीर्य से तुम्हारी देह बनी है, की प्रकृति, विचार और संस्कारों का असर या अंश तुम्हारे स्थूल और सूक्ष्म शरीर के अन्दर मौजूद हैं या तुम्हारे शरीर की प्रकृति उनकी प्रकृति से मिलती है, इसलिये मनुष्य की तबज्जह बाहरी ख्यालात और शारीरिक भान को भूलकर अन्तर में एकाग्र होती है या दिमाग के अन्दर उलट कर दाखिल होती है, तो वह विचार या भाव जो पुरुष में मौजूद थे और जिनके प्रभाव मनुष्य के दिमाग या सूक्ष्म शरीर में मौजूद हैं, दूरबीन के सिद्धान्त के अनुसार बड़े मालूम होते हैं या ख्याली रूप

धारण कर लेते हैं या रूप धारण किये प्रतीत होते हैं। वे पुरुष किसी न किसी शक्ल में नजर आते है। यह नहीं कि वह मिलते हैं। हां जो भेद से परिचित नहीं हैं वह इन दृश्यों को सच्चा समझ लेते हैं।

भगवान—क्षमा कीजिये। इससे तो यह साबित हुआ कि पितृलोक आदि केवल बिचार या संस्कार की अस्थाई या आरजी उपज है। उनकी कोई असलियत रचना में नहीं है। उनका दृष्टिगोचर होना केवल विचार और संस्कारो से सम्बन्ध रखता है जो हमें सदैव बिरासत [उत्तराधिकार] में प्राप्त होते हैं।

फकीर—विषय बहुत गम्भीर है। ध्यान से सुनो। बाहर ही पितृलोक आदि हैं क्यों कि जिस प्रकार की प्रकृति तुम्हारे पुरखों में थी वह बाहर से ही तो उन्होंने ली थी और वह प्रकृति अब भी बाहर मौजूद है। जब मनुष्य अपने अन्दर उस स्थान पर तवज्जह को ले जाता है तो उसका सम्बन्ध रेडियो के उसूल के अनुसार धारों के जरिये बाहरी मण्डल से हो जाता है और मनुष्य के विचार या भावों का प्रभाव भी उन मन्डलों तक जाता है। मनुष्य अपने स्थान पर रहता हुआ अपने दिमाग में एकाग्र होकर दूर-दराज देशों की सैर या परिचय प्राप्त कर सकता है बशर्ते कि वह एकाग्र व पक्के विचार वाला हो।

भगवान—इसका कोई प्रमाण ?

फकीर—सतसंग में ऐसे सवाल करना मना है क्योंकि इनसे चमत्कार में फँसाव बढ़ता है। और मनुष्य का असली ध्येय जो आवागवन से छुटकारा पाने का है गुम हो जाता है। खैर ! मैं एक घटना सुनाता हूँ।

जब मैं होशियार पुर में मकान बनवा रहा था ,मेरे मित्र पं० पुरुषोत्तमदास मेरे पास ठहरे हुये थे। एक रात मेंह पड़ रहा था। मैं चलता-२ उनके स्थान के सामने फिसल कर गिर पड़ा। उनकी पुत्री ने उस समय मेरी सहायता की। दिल में सहानुभूति पैदा हुई। उसने तमाम मेरे कपड़े साफ किये, गर्म पानी करके साबुन से मेरे हाथ पैर धोये। उसका पति पांच वर्ष से लापता था और वह बेचारी बेहद दुःखी रहती थी। लड़की के हित, प्रेम और विश्वास के कारण मेरे दिल में दया आई और उसके पति का पता लगाने का ख्याल पैदा हुआ। पुरुषोत्तम से उस लड़के की फोटो मंगाई और सुबह उस फोटो को ध्यान से देखकर और लड़के की तलाश का ख्याल लेकर मैं समाधी में चला गया। मैंने उसको कलकत्ते में पीले रंग के मकान के अन्दर देखा। समाधि से उठकर मैंने पुरुषोत्तमदास से कहा कि लड़का कलकत्ते में मोजूद है। वह स्वयं आयेगा। पुरुषोत्तम इन बातों पर यकीन नहीं रखता था लेकिन दिल में मेरी इज्जत करता था। इसलिये खामोश रहा। तीन माह के बाद लड़का स्वयं आ गया। अब वह फौज में नौकर है। अपने पर उसने स्वीकार किया कि वह उन दिनों में पीले मकान में ठहरा हुआ था। यह प्रमाण है लेकिन मैं सबके लिये ऐसा करना चाहूँ तो नहीं हो सकता। यह ख्याल और तबीयत के रुझान की बात है। मेरा विचार ऐसी बातों से दूर रहना चाहता है। कभी-कभी किसी-किसी के लिये इच्छा भी की लेकिन तबीयत ने न माना। मगर बात यह बिलकुल सच है। इसी तरह इंसान अपने दिमाग में एकाग्र होकर जिस लोक में जाना चाहता है जा सकता है। इसका अर्थ कदापि यह नहीं कि वह

अपना शरीर छोड़ कर जाता है। बल्कि रेडियो की धार (Current) के सिद्धांत के अनुसार वह वहां के हालात और वाकआत को देख सकता है। लेकिन ख्याल रहे इस तबीयत का आदमी अपने असली ध्येय से गिर जाता है। चमत्कारों में फंसाव की आदत उचित नहीं।

भगवान—क्या यह दृश्य वह विचार से देखता है?

फकीर—विचार भी वास्तव में अपना अस्तित्व रखता है। विचार में प्रबल शक्ति है। विचार से कोई दृश्य बनाना मामूली बात नहीं है। इसी प्रकार शिव लोक, विष्णु लोक, आदि आदि भी रचना के लोक हैं। वहां तेजोमय या प्रकाश रूप दुनियां बसती है। यदि किसी व्यक्ति में इस प्रकार की रुचि या आशक्ति है तो वह एकाग्रता का अभ्यास हो जाने पर इस शरीर में बैठा हुआ दृश्य देख सकता है।

भगवान—क्या वहां के अनुभव सबके एक समान होंगे।

फकीर—नहीं, वह दृश्य जो मनुष्य देखता है उसमें उस की अपनी प्रकृति का असर भी शामिल रहता है। मसलन महात्मा बुद्ध को जो ज्ञात हुआ उसकी सूरत दूसरी थी और अन्य महात्माओं की दूसरी। चूंकि लोगों की प्रकृति में भिन्नता है। इसलिये हर एक व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुसार उसी प्रकृति वाले लोकों का दृश्य देख सकता है अथवा ख्याली तौर पर वहां जा सकता है। इसलिये यह जो कुछ भी है प्राकृतिक खेल है। जो व्यक्ति इस ओर तवज्जह देगा, निज स्वरूप को प्राप्त न कर सकेगा। इसीलिये सन्तों ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया है। यह हालतें अभ्यास के दिनों में स्वयं भी पैदा होती रहती है और

इनका प्राक्टय प्रत्येक अभ्यासी को अपनी प्रकृति के अनुसार होता रहता है। कुदरत की तमाम शक्तियां आंशिक रूप में मनुष्य देह में मौजूद हैं। जब तवज्जह अपने अन्दर उन स्थानों पर एकाग्र होती है तो इसका सम्बन्ध उन लोकों से, जो उस प्रकृति के बाहर में मौजूद हैं कायम हो जाता हैं। अफसोस है कि शब्दों का भण्डार काफी नहीं मिल रहा है और बात बारीक है इसलिये अपने भाव या अनुभव को ज्यों का त्यों प्रकट करने से मजबूर हूँ। फिर भी विचार से समझने का प्रयत्न करो।

भगवान—आपका अभिप्राय यह हुआ कि ब्रह्माण्ड में जो बिस्तृत रूप में है वह पिंड में छोटे रूप में है और जो व्यक्ति पिंड में अपनी तवज्जह को किसी स्थान पर एकाग्र करता है वह जानकर या अनजाने तौर पर धारों के जरिये इस स्थान की प्रकृति से, जो बाहर ब्रह्माण्ड में है, सम्बन्ध जोड़ सकता है।

फकीर—बिल्कुल ठीक है।

भगवान—फिर यह शिव लोक विष्णु लोक आदि क्या है ?

फकीर—प्रगट करना कठिन हो रहा है, क्योंकि हिन्दूओं को ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम कृष्ण आदि शब्दों द्वारा विशेष-विशेष प्रकार के ख्यालात और संस्कार मिले हुये हैं, इसलिये वह अपने संस्कारों के कारण एकाग्रता की दशा में अपने ही अन्दर वैसे ही रंग रूप आदि देखते हैं। स्लाम या अन्य धर्मावलम्बियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के संस्कार या ख्यालात बाहर से मिले हुए हैं, इसलिये वह उनके अनुसार अन्तरीय दृश्यों के भासमान होने या प्राकृ-

तिक प्रकाश आदि के नाम भिन्न भिन्न रखे हुये हैं और उनका वर्णन भी भिन्न-भिन्न तरीकों से किया गया है। इसलिये प्रत्येक अभ्यासी अपने-अपने संस्कारों या प्रकृति के अनुसार दृश्य देखा करता है। तुम सिद्धान्त को समझ लो। ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि सब के सब कुदरत की भिन्न २ शक्तियों के नाम रक्खे हुये हैं और अलंकार रूप में जो-जो शब्द या रूप उनको प्रकट करने के लिये वर्णन किये गये हैं उनके अनुसार वे मानव को अपने अन्दर नजर आते हैं। मैं कह चुका हूँ कि यह सब प्रकृति का खेल है और साथ ही उन संस्कारो का नतीजा है जो मनुष्य को शब्द, विचार और स्पर्श (touch) द्वारा प्राप्त होते हैं।

भगवान—शायद आपका यह अभिप्राय है कि अभ्यास में जो दृश्य या रूप रंग आदि दृष्टिगोचर होते हैं, वह सब बाह्य प्रभावो का परिणाम होते हैं साथ ही उनका दृष्टि-गोचर होना या भासमान होना प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति के अनुसार होता है। अर्थात बाह्य प्रभाव और मनुष्य की अपनी प्रकृति इन दृश्यों में असर रखती है तथा बाह्य प्रभाव भी प्रकृति में बाहर से आते हैं जो इस ब्रह्मांड में पहिले से विद्यमान हैं।

फकीर—बिल्कुल ठीक है। अब यदि और कुछ पूछना है तो पूछ सकते हो।

भगवान—आपकी दया है। इस समय और कुछ पूछना नहीं है। विशेष फिर कष्ट दूंगा।

तृतीय प्रसंग

प्यारे भगवान सिंह !
तुम्हारा दर्द भरा पत्र मिला । पढ़ा ।
कौन है जो दर्द से खाली, जहाँ में ऐ अजीज ।
दर्द से खाली वहीं है, जिसको है सच्ची तमीज[1] ॥
तमीज यह आती नहीं, हरगिज ऐ भगवानसिंह ।
जब तलक हासिल न हो, यकसुई मेरे अजीज ॥
मुद्दआये जिन्दगी है, यकसुई बस यकसुई ।
यकसुई जब तक न आये, इंसान है वह बेतमीज[2] ॥
१ सार अनुभव, २ अज्ञानी ।

तुमने लिखा कि आज शिवरात्रि को जो दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल का जन्म दिन है, उनकी याद मना रहा हूँ, मगर साथ ही आवागवन के वहम से दुःखी हो रहा हूं । तुमने मुझसे इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने को लिखा है ।

प्यारे भाई ! यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि मैं वह व्यक्ति हूं जो स्वार्थ, मान, यश और नाम के ख्याल से बिल्कुल आजाद हूँ । वह बात कहा करता हूँ जो अमल से अनुभव में आ चुकी है । अतः इससे पहले कि मैं आवागवन के विषय में अपने विचार प्रगट करूँ, मैं अपने दिल से यह सवाल करता हूँ कि क्या मेरा आवागवन चला गया है या नहीं ।

ऐ अजीज सुनो ! मेरे दिल से आवागवन का संशय दूर हो गया है । मुझे यह ख्याल बिल्कुल नहीं सताता कि जन्म मरण होता है या नहीं । यदि जन्म-मरण होता है तो वह

किस बला का नाम है। ऐसा कैसे हुआ? दाता दयाल की संगत और उनके दिये हुये संस्कार से। तुम शायद मेरी बात भली भांति न समझ सको, इसलिये सुनो शास्त्र कहते हैं :—

ध्यान मूलम् गुरुमूर्त्ति, पूजा मूलम् गुरु पदम।
मंत्र मूलम् गुरुर्वाक्यम् मोक्ष मूलम् गुरु कृपा॥

याद रक्खो! आवागवन से छुटकारा केवल गुरु कृपा से से होता है।

वह गुरु कृपा क्या है? सतपुरुष रा० स्वा० दयाल की वाणी सुनो —

गुरु ने दीन्हा भेद अगम का, सुरत चली तजि देश भरम का।

(पूरा शब्द भूमिका में दर्ज है। एक बार फिर पढ़ो)

मैं तुम्हारा ध्यान इस शब्द के सारांश की ओर सूक्ष्म रूप से ले जाता हूँ।

सतगुरु ने दया की। भेद दिया। फिर क्या हुआ? भेद मिलने पर स्वर्ग-नर्क, जन्म मरण का संशय दूर हो गया और सच्ची भक्ति का अधिकारी हो गया। अब समझो कि गुरु कृपा क्या है। बाहरी पूर्ण सतगुरु ने दया करके नाम प्रदान किया। दूसरे शब्दों में एकाग्रता का तरीका बताया इस एकाग्रता के तरीके का अर्थ है सम दम का अभ्यास। जब यकसुई या नाम या सम दम का अभ्यास पूरा हो गया तो बाहरी सतपुरुष के बचन द्वारा राज (सार ज्ञान) की समझ आ गई और जन्म मरण का संशय जाता रहा।

मैं और अधिक विस्तार से काम लेता हूँ ताकि किसी तरह बात समझ में आ जाय। इस एकाग्रता की पांच

हालतें या आस्थायें हैं :—

प्रथम—तुम्हारी वह अवस्था जहां तुम्हारे मन में हजारों प्रकार के विचार पैदा होते रहते हैं।

द्वितीय—तुम्हारी वह अवस्था जहां तुम्हारा मन सिर्फ एक प्रकार की विचार धारा को इष्टदेव बनाकर उससे प्रेम करता है।

तृतीय—तुम्हारी वह अवस्था जहां तुम्हारा मन अपने इष्टदेव में लय होकर अपने आपको भूलने लगता है।

चतुर्थ—तुम्हारी वह अवस्था जहां तुम्हारा मन अपने आप में लय होकर व्यक्ति गत रूप से अपने आपको भी भूल जाता है।

पंचम—तुम्हारी वह अवस्था जहां तुम्हारा मन अपने आपको खोकर ऐसी दशा प्रगट करता है जहां मन तो नहीं मगर तुम हो।

इन अवस्थाओं के प्रगट करने के लिये सन्तों, फकीरों और धर्म संस्थापकों ने भिन्न-भिन्न नाम रक्खे हैं। जैसे कि हिन्दुओं में एक मन्त्र आता है जिसमें इन अवस्थाओं का वर्णन दूसरे ढंग से मौजूद है।

ओ३म् भूः ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, ओ३म् महः, ओ३म् जनः ओ३म् तपः, ओ३म् सत्यम्।

इसी प्रकार स्लाम धर्म में सूफियों ने जबूरत, मलकूत, नासूत, हूत, हूतुलहूत इत्यादि नाम रक्खे हैं और सन्तों ने सहसदल कंवल, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवर गुफा आदि-आदि।

कई महापुरुषों ने इस एकाग्रता या नाम की अवस्थाओं

को समझाने के लिये बहुत सी श्रेणियाँ (चक्र) नियत की हैं विशेष व्याख्या व्यर्थ है केवल सारांश को समझलो।

सन्तों की बाणी में जिन श्रेणियों चक्रों) का उल्लेख आता है वे वास्तव में मनुष्य के बोध या भावों की रोचक ढंग पर व्याख्या है। पिंडे सो ब्रह्माण्डे। ब्रह्माण्ड में जो शक्तियाँ काम कर रहीं हैं वही शक्तियाँ छोटे पेमाने पर पिंड अर्थात मनुष्य देह में भी विद्यमान हैं। हाँ! वाणी के शब्द रोचकता लिये हुये हैं और वर्णन शैली भक्ति और प्रेम के संस्कारों से भरी हुई है। वह वाणी उस समय की परिस्थितियों के अनुसार ठीक और अनुकूल थी।

तुम या अन्य व्यक्ति कह सकते हैं कि जिनको इन श्रेणियों से गजरने का अवसर नहीं मिला, अतः वह लोग वाणी की सच्चाई में शक शुभा कर सकते हैं। ऐसे ही विचार से प्रभावित एक सज्जन ने मुझसे कहा भी था कि राधा स्वामी मत सब्ज बाग दिखाता है। जिनको इन स्थानों का अनुभव नहीं हुआ है उनका कहना ठीक है।

ऐसे ही पुरुषों के भ्रमों को मिटाने के लिये मैंने सत्संग का काम प्रारम्भ किया। वास्तव में बात यह है कि मनुष्य का स्वभाव या उसका मन रसिक है। जब वह कथन के अनुसार आनन्द और मस्ती के दृश्य नहीं देख पाता तो उदास होता और भ्रम में फंस जाता है। इस त्रुटि या कमी को दूर करने के लिये सन्तमत या राधा स्वामी मत में जीवित पूर्ण पुरुष की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। वह पूर्ण पुरुष सार भेद का ज्ञाता हो, सचाई प्रिय हो, जीवों के भ्रमों को दूर करने वाला हो, निष्काम और निःस्वार्थ हो। मैंने यह मुसीबत और दुःख इसी कारण से

अपने सिर लिया है कि जो भाई मुद्दत से भटकते फिर रहे हैं वे इस भेद को समझ जांय।

इस वर्ष शिवरात्रि पर मैं लाहौर गया था। मेरी पत्नी ने पूछा कि अब आप स्वय स्वीकार करते है कि आपके भ्रम का नाश हो गये हैं तब इस बुढ़ापे में बाहर जाने से क्या स्वार्थ या अभिप्राय ? मैंने उत्तर दिया कि चूंकि तुम बूढ़ी हो गई हो और सतसगियो की सेवा करने के अयोग्य हो, विवश होकर दाता दयाल का स्मृति दिवस (यादगार) मनाने लाहौर जाना पड़ता है ताकि तुमको कष्ट न हो। उन्हो ने फिर कहा कि आप अकेले भी यह दिन मना सकते है। जब आपको कोई गरज नहीं और अन्य साधुओ, महात्माओं अथवा गुरुओं की भांति भेंट वगैर नहीं लेते तब इस जनून से क्या लाभ ? मैं हँसा। बोला ऐ सच्ची स्त्री मैं तुझे गुरु का रूप मानकर नमस्कार करता हूँ ! तूने इस दीवानगी में मेरा साथ दिया है। मेरे कारण तुमको तथा माता पिता और भाईयो को कष्ट पहुँचा है। वास्तव मे मेरे वश की कोई बात नहीं हैं। ऐसा होना ही था। अब मैं दाता दयाल के शुद्ध स्वरूप को अपने से पृथक मान नहीं करता। शिवरात्रि का जन्म दिन भी सोशल या सामाजिक कार्य है। इसके सहारे अपने जैसे दीवानों को समझाने का ख्याल रहता है कि 'जिस वस्तु की तलाश में तुम भटकते फिर रहे हो वह तुम्हारे पास है।"

ऐ भगवान सिह ! इन स्थानो से गुजर जाना और सार भेद को प्राप्त करना कोई कठिन काम नहीं है। यदि कमी है तो यह कि मनुष्य के हृदय में सांसारिक वासनायें भरी हुई हैं। वास्तव में सार भेद के जानने की अभिलाषा किसी बिरले ही को है, वर्ना किसी को कोई कष्ट है।